ओ३म

और स्वास्थ्य

लेखक :

सूर्यबलि पाण्डेय

वितरक :

लाजपत राय आर्य
अमर स्वामी प्रकाशन विभाग
३/३६६, दयानन्द नगर, गाजियाबाद-२०१००१ (उ०प्र०)

प्रथम २०००) (मूल्य : ७५

और
प्रदान
था में

हमारा भोजन

यह शरीर एक पार्थिक यन्त्र है। कोई भी यन्त्र हो, उसके सफल संचालन के लिए तथा उसकी निरन्तरता स्थिर रखने के लिये कुछ बाहरी पदार्थों की आवश्यकता होती है तब शरीर रूपी यन्त्र उसका अपवाद कैसे हो सकता है? प्रति क्षण कार्य-रत रहने से श्रम के कारण शरीर के जिन अणुओं का क्षय होता रहता है उनकी पूर्ति अनिवार्य है। अत. जिन पदार्थों से उनकी पूर्ति की जाती है, हमारी भाषा में उन पदार्थों काही नाम भोजन है। अतः वे वाह्य पदार्थ, जिनके द्वारा हम शरीर की खोई हुई शक्ति का पुनः संचयन कर उसे कार्य करने की क्षमता प्रदान करते हैं, भोजन कहलाते हैं।

शरीर करोड़ों घटकों का समुच्चय है। ये घटक शरीर के निष्क्रिय रहने पर निरर्थक तथा सक्रिय रहने पर अनुक्षण क्षय ोक प्राप्त होते रहते हैं। फलतः निष्क्रिय रहने पर शरीर तन्द्राभिभूत तथा सक्रिय होने पर श्रम से कातर और अन्ततः सर्वांग में शिथिल हो जाता है। किन्तु यदि ऐसे ही आड़े अवसर पर उसको भोज्य पदार्थ मिल जाय तो उससे शरीर में नव जीवन का संचार हो जाता है। वह कुछ समय के लिये पुनः जागरूक हो उठता है और अपने कार्य में संलग्न हो जाता है। अस्तुः इस पार्थिव शरीर के लिए भोजन अपना एक विशिष्ट महत्व रखता है। भोजन शरीर के घटकों का विकास और उनकी वृद्धि करता है। क्षति की पूर्ति तथा नूतन शक्ति प्रदान करता है। किन्तु भूलना न होगा कि वही भोजन अखाद्यावस्था में

शरीर के ऊपर अपना विपरीत प्रभाव डाले बिना नहीं रहता। फलतः शनैः शनैः शरीर क्षय की ओर अग्रसर हो जाता है। अतः भोजन के सम्बन्ध में अत्यन्त सावधान रहने की आवश्यकता है।

हमारे शरीर को अवसन्न होने का अवसर न मिले। वह अपने ऊपर पड़े दायित्व का सफलता पूर्वक निर्वाह करने में समर्थ हो इसके लिये सन्तुलित भोजन का मिलना परमावश्यक है। बिना सन्तुलित भोजन के शरीर की प्रगति रुक जाती है। फलतः उसके द्वारा सफलतापूर्वक कार्य का सम्पादन होना भी असम्भव हो जाता है। सन्तुलित भोजन से हमारा अभिप्राय उस भोजन से है जिसमें वे सभी अपेक्षित तत्व मिल सकें जिनके बिना शरीर का सुस्थिर रहना सम्भव नहीं है। शरीर है क्या २०६ हड्डियों के योग से बना अस्थि पंजर है। उसको नस नाड़ियों से बांध कर एक ढांचा खड़ा किया गया है। ढांचा या कंकाल के ऊपर ६६० मांस पेशियां जमाकर ऊपर से ७ परतों की त्वचा से आच्छादित कर दिया गया है। उक्त सभी पदार्थ यथा विधि कार्य करते रहें, इस उद्देश्य से रक्त वाहिनी शिरा और धमनियों द्वारा सारे शरीर में रक्त संचार कर दिया गया है। इस व्यवस्था की निरन्तरता अक्षुण्ण बनी रहे, इसी लिए उसमें भोजन का पुट दे दिया गया है जिससे अस्थि मांस-त्वचा-नस नाड़ियाँ तथा शिरायें अपने अपने अपेक्षित तत्वों को प्राप्त करती रहे और इस शरीर की सारी क्रियायें अबाध गति से चलती रहे।

शरीर शास्त्र के मर्मज्ञों ने शरीर के लाभ के लिये तथा राष्ट्र के नागरिकों की स्वास्थ्य रक्षा के लिए स्वास्थ्य के मूल संतुलित भोजन के सम्बन्ध में समय समय पर अनेक शोध किया है। सुदूर प्राचीन काल से अद्यावधि अनेक अनुसंधानों की परम्परा चली आ रही है। प्रायः सभी समयों में सभी देशों के विशेषज्ञों ने भोजन तत्व पर चिन्तन किये हैं और उसके सम्बन्ध में समाज

के समक्ष अपने निष्कर्ष प्रस्तुत किये हैं। कहना न होगा कि प्राचीन और अर्वाचीन सभी चिन्तकों ने भोजन के सम्बंध में दूध और फल की उपादेयता मुक्त कण्ठ से स्वीकार की है। क्या पाश्चात्य और क्या पौर्वत्य सभी विद्वानों ने दूध और फल को सर्वांग पूर्ण भोजन होने की घोषणा की है। पर खेद है कि सृष्टि की बहुलता और दुग्ध तथा फल की अपर्याप्तता का बहाना लेकर मानव ने कुछ ऐसे द्रव्यों को भोजन सामग्री में ला उपस्थित किया है जिसे भाज्य अथवा खाद्य नाम देना न न्याय सगत कहा जा सकता है और न नीति संगत ही। हमारी सरकार ने भी भोजन के नाम पर मत्स्य और मांस की पूर्ति करने में किसी प्रकार का कोर कसर उठा नहीं रखा है। आज लाखों जन मत्स्य तथा कुक्कुट विभाग के विकास में लगे हुए हैं और गोपाल की इस पावन गोशाला भारत भूमि में सहस्त्रों पशु वध-शालायें खुली हुई हैं जिनमें लाखों निरीह पशु हमारी उदर-पूर्ति के लिये नित्य मृत्यु के घाट उतारे जाते हैं तथा उनके शरीर की बाटियों को हमारे समक्ष सन्तुलित भोजन के रूप में रखा जा रहा है। अतः मांस कहां तक मानव का आहार बन सकता है और उसके द्वारा हमारे भोजन की समस्या कहां तक सुलभ सकती है? इस सम्बन्ध में कुछ विचार उपस्थित करना अपना कर्त्तव्य समझता हूं।

भोजन न केवल हमारे शरीर के निर्माण के लिए अपितु उसी के माध्यम से जीवन निर्माण के लिए भी परमावश्यक है। "भोजन जीवन के लिए है जीवन भोजन के लिए नहीं है।" इस उक्ति की सार्थकता भी इसी में है कि भोजन करने वाले का जीवन ऐसा हो जिससे 'जीओ और जीने दो' के सिद्धान्त का पालन हो। वह जीवन कदापि जीवन कहलाने का अधिकारी नहीं जिसके कारण अगणित प्राणियों के जीवन का अपहरण किया जा रहा हो। भारतीय संस्कृति, (जिसे हम सृष्टि की उच्चतम

संस्कृति मानते हैं) में जीवन निर्माण के कतिपय साधन हैं। उनमें यम और नियमों का विशिष्ट महत्व है। यम और नियमों की कसौटी पर जो जीवन खरा उतर जाय, भारतीय व्यवस्था ग्रन्थ उस जीवन को उत्तम जीवन कहते हैं। जीवन के निर्माण में यम के जिन ५ तत्वों (अहिंसा सत्यमस्तेय ब्रह्मचर्य अपरिग्रहाः यमाः) की साधन रूप में गणना है उनमें अहिंसा सर्वप्रथम साधन है। अहिंसा की परिभाषा करते हुए भगवान व्यास ने कहा है-"तत्राहिंसा सर्वथा, सर्वदा सर्वभूतानामनभिद्रोहः।" अर्थात् मन बचन और कर्म से किसी भी प्राणी के साथ किसी भी प्रकार का द्रोह न रखना ही अहिंसा है। यह अहिंसा दो प्रकार की होती है। १-निषेधात्मक अहिंसा और २-विध्यात्मक अहिंसा। अपने स्वार्थ के लिए मन बचन और कर्म से किसी भी प्राणी को किसी भी प्रकार का कष्ट न पहुँचाना मानव की निषेधात्मक अहिंसा है और किसी दुखिया के दुख को देखकर स्वयं कष्ट सहन करके भी उस प्राणी को सुखी बनाने की चेष्टा करना विध्यात्मक अहिंसा कहलाती है। जिस मानव के अन्दर उक्त दोनों प्रकार की अहिंसा विद्यमान हो वही बड़भागी मानव वास्तव में मानव कहलाने का अधिकारी है और हम कह सकते हैं कि उस महा मानव के जीवन का वास्तविक निर्माण हुआ है। परन्तु क्या मांस-भोजन हमारे जीवन निर्माण के मार्ग में हमारा सहायक बन सकता है ? क्या उसके द्वारा हम अपने पतित स्वार्थ के लिए दूसरे प्राणी के जीवन के सारे सुखों को सर्वथा छीन नहीं लेते ? क्या हमारे स्वार्थ की बलिवेदी पर उस प्राणी का सर्वस्व लुट नहीं जाता ? यदि हां, तो फिर मांस भक्षण कर क्या हम मनुष्य कहलाने के अधिकारी रह जाते हैं ! यदि नहीं, तो मनुष्यता की कोटि से हमें बंचित कर देने वाला मांस हमारा भोजन कैसे कहला सकता है ?

मनीषियों ने अहिंसा को परम धर्म कहा है (अहिंसा परमोधर्मः अहिंसैव परम तपः। अहिंसा परमो दानं इत्याहुः

मनीषिणः। (पद्म पुराण) जब अहिंसा परम धर्म है तब उसका विलोम हिंसा निश्चय ही महापाप है। यह इसलिए नहीं कि किसी ऋषि अथवा आप्त पुरुष का यह कथन है अपितु इसलिए कि हिंसा अथवा हत्या के द्वारा हम किसी प्राणी के उस तत्व को अपने स्वार्थ के लिए हरण कर लेते हैं जिसे पुनः वापस नहीं कर सकते। हम अपने स्वार्थ के लिए तथा छुद्र उदर पूर्ति के लिए परम पिता परमात्मा की दिव्य-कला पर आघात करके एक प्राणी के अस्तित्व को ही समाप्त कर देते हैं। भला जिसका निर्माण हमारी शक्ति के परे हैं उसका संहार कैसे न्याय संगत कहा जा सकता है। इसीलिये हिंसा, हत्या अथवा उसके फल-स्वरूप मांस भक्षण महा पाप है। क्योंकि इस कुकर्म के द्वारा मानव अपनी मानवता खोकर राक्षस बन जाता है। हिंसा इसलिए भी महापाप है कि इसके द्वारा हम किसी प्राणी को अपूरणीय क्षति पहुँचाते हैं। उसका सब कुछ हर लेते हैं। महात्मा बुद्ध ने इसीलिए कहा है कि "जो वस्तु तुम किसी को दे नहीं सकते वह उससे छीनने का तुम्हें अधिकार नहीं है।"

हमने मांस के सम्बन्ध में ऊपर जो मत उपस्थित किया है उसका आधार नैतिक दृष्टिकोण है। नैतिक दृष्टि से मांस न केवल अखाद्य अपितु सर्वथा त्याज्य है। अब हम उसे धार्मिक दृष्टि से भी परखना चाहते हैं। धर्म और ईश्वर का अनन्य सम्बन्ध है। ईश्वर ही इस जगत का रचयिता और उसका रक्षक है। वही सबका पिता और पालक है। उसने अपनी सन्तानों के लिए सर्वत्र भोजन की व्यवस्था किया है। उसके राज्य में कोई प्राणी निराहार नहीं। यही नहीं, उसने सभी प्राणियों के लिये उनके स्वभाव के अनुकूल ही भोजन की व्यवस्था की है। पर हम आगे चलकर देखेंगे कि मांस उसकी व्यवस्था का भोजन नहीं है। क्योंकि वह स्वाभाविक भोजन नहीं है। जब वह ईश्वर ही सारी सृष्टि का "जनिता पिता विधाता" है तब सब प्राणियों का

पारस्परिक सम्बन्ध क्या हुआ ? क्या एक ही पिता की सन्तान होने के कारण सभी परस्पर भाई नहीं हुये ? यह भी सत्य है कि ज्ञान से ही प्राणी की ज्येष्ठता और वरिष्ठता होती है। अन्य प्राणियों की अपेक्षा मानव में ज्ञान और विवेक अधिक है इसी कारण वह अन्य प्राणियों में ज्येष्ठ और श्रेष्ट है। ऐसी अवस्था में क्या यह महा अनर्थ नहीं है कि बड़ा भाई अपनी उदर पूर्ति के लियेअपने छोटे भाइयों की हत्या करे और अपने भाइयों के मांस का ही स्वाद बखानता हुआ खाये ? क्या मानव के इस राक्षसी कृत्य से उसका पिता प्रभु उसपर प्रसन्न होगा ? अस्तु हम स्वयं पिता की स्थिति में होकर विचार कर सकते हैं कि जब हम अपने नन्हें से मुन्ने के ऊपर जरा सी आंच देखकर तिलमिला उठते हैं और उसके लिये अव्यवस्था करने वाली अपनी बड़ी सन्तान को दण्डितकर बैठते हैं तब सबका पिता परमात्मा अपनी लाखों करोड़ों सन्तानों का नित्य विनाश देखकर कैसे शान्त रह सकता है ? क्या वह सभी अत्याचारी सन्तानों को दण्डित नहीं करेगा ? मैं समझता हूं वह अवश्य करेगा। लाखों प्रकार की योनियों में केवल मानव ही सर्वाधिक रोग ग्रस्त और विपत्ति संकुल है। क्या स्पष्ट ही परमपिता प्रभु की ओर से उसपर यह दण्ड प्रहार नहीं है ? अतः यदि मनुष्य अपने परमपिता परमात्मा को प्रसन्न करना चाहता है (जो उसके जीवन का चिर लक्ष्य है) और चाहता है कि प्रभु उसपर सुख की वर्षा करे तो यह परमावश्यक है कि वह मांस खाना छोड़कर सभी जीवों के साथ उचित व्यवहार करे। हम यह जो पक्ष उपस्थित कर रहे हैं वह केवल कल्पना प्रसूत नहीं अपितु आर्ष और आप्त प्रमाणों पर पूर्ण रूपेण आधारित है। भगवान् मनु इस सम्बन्ध में निम्नलिखित व्यवस्था करते हैं।

योऽहिंसकानि भूतानि हिनस्त्यात्म सुखेच्छया।
स जीवंश्च मृतश्चैव न क्वचित् सुखमेधते।। मनु० ५-४५

अर्थात् जो स्वार्थी मनुष्य अपने सुख की इच्छा से दूसरों को कष्ट न पहुँचाने वाले प्राणियों की हत्या करता है वह इस जीवन में और परलोक में कहीं भी सुखी नहीं हो सकता । कारण स्पष्ट है । कर्म फल दाता भगवान की दृष्टि में वह दण्डनीय है तब उसके सुख की इच्छा कैसे पूर्ण हो सकती है ? किन्तु इसके विपरीत—

यो बन्धन बध क्लेशान् प्राणिनां न चिकीर्षति ।
स सर्वस्य हितः प्रेप्सुः सुखमत्यन्तमश्नुते ॥ मनु०५-४६

अर्थात्—जो प्राणियों को बन्धन और बध का कष्ट नहीं देता वह सभी प्राणियों का शुभचिन्तक अत्यन्त सुख का भागी होता है । क्यों न होगा ? बुरे कर्मों का परिणाम दुख तथा भले का परिणाम सुख होता ही है । तब कर्म फल का नियामक परमात्मा उसके ऊपर सुख की वृष्टि क्यों न करेगा ? केवल यही नहीं कि जीव हत्या अथवा मांस भक्षण से सुख की उपलब्धि नहीं होती अपितु भगवान मनु ने मांस भक्षण को सर्वथा 'अस्वर्ग्य' कह कर उसे दुख का कारण भी बताया है । यथा—

नाऽकृत्वा प्राणिनां हिंसा मांसं उत्पद्यते क्वचित् ।
न च प्राणि वधः स्वर्ग्यः तस्मान्मासं विवर्जयेत् ॥ मनु० ५-४८

अर्थात् बिना प्राणियों की हत्या किये मांस मिल नहीं सकता और प्राणियों का बध करना कभी भी सुखकारी नहीं, अपितु दुख का ही कारण होता है। सीलिए मांस सर्वथा निषिद्ध है । इसीलिये तो भगवान् मनु ने 'मांस' शब्द की व्युत्पत्ति करत हुये स्पष्ट लिखा है—

मांस भक्षयिताऽमुत्र यस्य मांस मिहाद्म्यहम् ।
एतन्मांसस्य मांसत्वं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ मनु० ५-५५

अर्थात् जिसका मांस इस जीवन में मैं खाता हूं परलोक में वही प्राणी मुझको खाता है । मनीषी लोग मांस की यही

वास्तविकता बतलाते हैं। श्रीमद् भागवत् पुराण भी मानव धर्म-शास्त्र की पुष्टि करते हुए उसका ज्यों का त्यों समर्थन करता है। यथा—

ये त्वनेवंविदाऽसन्तः स्तब्धाः सदभिमानिनः ।

पशून द्रुह्यन्ति विस्रब्धाः प्रेत्य खादन्ति ते च तान् ॥ ११-५-१४

अर्थात् जो इस विशुद्ध धर्म को नहीं जानते वे घमण्डी वास्तव में तो दुष्ट हैं परन्तु समझते हैं अपने को श्रेष्ठ। वे धोखे में पड़े हुए लोग पशुओं की हिंसा करते हैं और मरने के बाद वे पशु उन मारने वालों को खाते हैं। मानव धर्मशास्त्र तो मांस भक्षण को रोग का कारण भी बतलाता है। साथ ही उसे पिशाच का भोजन बताते हुये मनुष्य के लिए निम्न शब्दों में त्याज्य बतलाया है।

न भक्षयति यो मांसं विधिं हित्वा पिशाचवत् ।

स लोके प्रियतां याति व्याधिभिश्च न पीड्यते ॥ मनु० ५-५०

अर्थात् जो पिशाचो की भांति खाद्याखाद्य के नियम का त्याग करके मांस नही खाता वह मनुष्य संसार में सर्वप्रिय बनता है और रोगों से भी ग्रसित नहीं होता। इतना ही क्यों ? उन्होंने मांस आदि को अमानवी भोजन कहा है। यथा–

यक्ष रक्ष पिशाचान्नं मद्यं मांसं सुरासवम् । मनु० ५-९६

अर्थात् मद्य, माँस, सुरा, और आसव मनुष्य का नहीं यक्ष, राक्षस और पिशाचों का भोजन है। कहिये, अब आप अपने को किस कोटि मे समझते हैं इसे आप ही जानें पर मांस भक्षण के कारण मनुष्य तो नहीं कहे जा सकते। हां, यदि मांस खाना छोड़ दें तो निश्चय ही आप कुछ से कुछ बन सकते हैं। यथा--

फल मूलाशनैर्मेध्यैर्मुन्यन्नानां चा भोजनैः ।

न तत्फलमवाप्नोति यन्मांस परिवर्जनात् ॥ ५-५४

अर्थात् फल मूल और मुनियों की भांति भोजन करने से भी वह फल प्राप्त नहीं होता जो फल मांस खाना छोड़ देने पर मनुष्य को मिलता है।

वर्षे वर्षेऽश्वमेधेन यो यजेत शतं समाः।
मांसानि च न खादेत् यः तयोः पुण्य फलं समः॥ मनु ५-५३

अर्थात् जो प्रति वर्ष अश्वमेध यज्ञ करता हुआ सौ वर्ष तक लगातार करे उसे जो फल प्राप्त होगा वही फल उस व्यक्ति को प्राप्त होगा जो जीवन भर मांस न खाय। भगवान मनु के शब्दों में जब मांस खाना छोड़ देने पर सौ अश्वमेध यज्ञों के फल के बराबर फल मिलता है तब उसी अनुपात में मांस खाने पर कितना दुष्परिणाम होता होगा और कितना पाप लगता होगा ? इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। परन्तु इसके विपरीत "अहिंसया च भूतानां अमृतत्वाय कल्पते।" मनु ३--६० प्राणियों की हिंसा न करने से मनुष्य मोक्ष के योग्य होता है। "अहिंसया तत्पदम्"। मनु० ६--७५। अहिंसा से मनुष्य परम पद को प्राप्त होता है। आदि अनेक प्रशसंनीय शब्द अहिंसा के सम्बन्ध में भगवान मनु ने मानव के समक्ष रखा है। आदि पुराण के कर्ता ने अहिंसा धर्म को सर्व श्रेष्ट धर्म तथा अभय दान को सर्व श्रेष्ट दान कहा है। यथा

"धर्माणां च यथाहिंसाभयदानं वरेण्यकम्"। आदि पु० १-१९

इसके विपरीत हिंसा को महा पाप की संज्ञा दी गई है। यथा–

प्रविशन्ति यथा नद्यः समुद्रमृजुवक्रगाः।
सर्वेऽधर्माश्च हिंसायां प्रविशन्ति तथा दृढम्॥ प.पु.उ.ख. १२३ ६

अर्थात् जैसे सीधी टेढ़ी सभी नदियां समुद्र में प्रवेश करती हैं उसी प्रकार सभी प्रकार के पापाचरण हिंसा के अन्दर स्थान पाते हैं। अर्थात् हिंसा सारे पापों का मूल है। इसी भाव को भगवान तुलसीदास ने भी अपने रामचरित मानस में व्यक्त करते हुए कहा है—"पर पीड़ा सम नहिं अधमाई" परन्तु अहिंसा की

प्रशंसा करते हुये कहा—"परम धर्म श्रुति विदित अहिंसा"। महाभारत कारने अहिंसा को परम धर्म और हिंसा को अधर्म का लक्षण बताया है। यथा–अहिंसा परमो धर्मो हिंसाचाधर्म लक्षणा। म० अश्वमेध पर्व ४३-२१। अधिक क्या ? महाभारत अनुशासन पर्व का अध्याय ११४, ११५ और ११६ तो केवल अहिंसा की ही महिमा गान कर रहे हैं। अस्तु,

ऊपर के सन्दर्भों में हमने अनेक शास्त्रों से अनेक स्थल उद्धृत कर यह स्पष्ट करने की चेष्टा की कि हमारे सभी धर्म ग्रन्थ जीव हिंसा को पाप और मन बचन तथा कर्म से जीवों को पीड़ा न पहुंचाने की भावना को ही धर्म कहा है। किन्तु इस सम्बन्ध में जब तक ईश्वर की वाणी वेद की सम्मति उपस्थित न हो तब तक सारे प्रमाण अपर्याप्त ही कहे जांयगे। वेद ने मानव को प्राणी मात्र का मित्र बनने का सन्देश दिया है। यथा–

दृते दृंह मा मित्रस्य मा चक्षुसा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्याहं चक्षुसा सर्वाणि भूतानि समीक्षे मित्रस्य चक्षुसा समीक्षामहे॥ यजुर्वेद अ० ३६ मंत्र १८।

अर्थात् हे सभी दुखों और अज्ञानों के विदारक। मुझे दृढ़ करें। मुझे समस्त प्राणी मित्र की दृष्टि से देखें। मैं भी समस्त प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखूं। इसीं प्रकार हम सब प्राणी परस्पर मित्र की द्रष्टि से देखा करें। स्पष्ट है कि जब प्रत्येक प्राणी एक दूसरे को मित्र की ही दृष्टि से देखेगा तब कौन किसको काटेगा और कौन किसको खायगा ? यहां वेद ने प्राणी मात्र के प्रति मित्र भावना का संदेश दिया है। अन्यत्र। यजुर्वेद में कहा है–

यजमानस्य पशून पाहि। यजु० १-१

अर्थात् यजमान के पशुओं की रक्षा करो। पुनः अन्यत्र कहा है—

बृहद्भिर्भानुभिर्भासन् मा हिंसीस्तन्वा प्रजाः। यजु० १२-३२

अर्थात् हे मानव तू (बृहद्भिः भानुभिः भासन्) महान

ज्ञान की किरणों से प्रकाशित हो अर्थात् सृष्टि के सम्पूर्ण प्राणियों में ज्ञानी हो (तन्वा) अपने शरीर से (प्रजाः मा हिंसीः) प्राणियों की हिंसा मत कर। कितना स्पष्ट निर्देश है? दूसरा कोई प्राणी किसी प्राणी को कष्ट दे दे तो क्षम्य है क्योंकि उसके पास स्वाभाविक ज्ञान के अतिरिक्त विवेक का अभाव है। पर मानव! जिसको ज्ञान के कारण सृष्टि कुल-चूड़ामणि कहा जाता हो! यदि वह अपने स्वार्थ बश किसी प्राणी को कष्ट दे दे तो वह आश्चर्य काही नहीं अपितु लज्जास्पद विषय होगा। अथर्ववेद में एक स्थल पर कहा है-प्रियः पशूनां भूयासम्। १७-१-४

अर्थात् हे प्रभु! मैं सभी पशुओं का प्यारा बनूं। कितनी दिव्य भावना है! पशुओं के प्रति ममता रखने वाला ही पशुओं का प्रिय बन सकता है। पशुओं के अंगों को काट काट कर अपना पेट पालने वाला राक्षस कभी भी पशुओं का प्रेमी या प्यारा नहीं बन सकता।

वेद भगवान ने मनुष्य के भोजन के सम्बन्ध में भी सुन्दर मार्ग दर्शन किया है। भोजन के सम्बन्ध में पशु और वनस्पतियाँ दोनों के प्रयोग का स्पष्ट निर्देश वेद करता है। प्रयोग कैसे हो? इसका उत्तर वेद के शब्दों में ही सुनें।

पुष्टिं पशूनां परि जग्रभाहं चतुष्पदां द्विपदां यच्च धान्यम्।
पयः पशूनां रसमोषधीनां बृहस्पतिः सविता मे नियच्छात्॥
अथर्व। १९-३१३

अर्थात् मै द्विपद और चतुष्पद पशुओं तथा धान्यों से पुष्टि ग्रहण करता हूँ पशुओं से तो दूध प्राप्त करता हूं और औषधियों (अनाजों) से रस प्राप्त करता हूँ। सबके स्वामी और सबको उत्पन्न करने वाले भगवान ने मेरे लिये यही नियम निर्धारित किया है। कितना स्पष्ट है वेद का यह निर्देश! हम पशुओं से पुष्टि ग्रहण करते हैं। किस रूप में ग्रहण करते हैं?

इसका स्पष्ट उत्तर वेद देता है–"पयः पशूनाम्" अर्थात् पशुओं का दूध ही ग्रहण करते हैं। यदि पशुओं का मांस भी ग्रहण करना अभीष्ट होता तो वेद में "पयः पशूनां मांसं च" का उल्लेख अवश्य होता पर मंत्र में ऐसा नहीं है। अतः स्पष्ट है कि वेद पशुओं से केवल दूध ग्रहण करने की आज्ञा प्रदान करता है। मांस का नहीं। अथर्व वेद के १९वें अध्याय के ३१वें सूक्त में कुल १४ मन्त्र हैं जिनमें मनुष्य को पुष्ट बनाने का विधान है। पर उनके अन्दर भोजन के उल्लेख में कहीं भी मांस का आदेश नहीं है। कुछ लोग सैनिकों अथवा क्षत्रियों के लिए मांसाहार आवश्यक बतलाते हैं। अथर्व वेद अध्याय ४ सूक्त २७ के मन्त्रों में सैनिकों के भोजन का वर्णन है। पर उसमें कहीं भी मांस का उल्लेख नहीं है। उक्त स्थल पर वेद में सैनिकों को 'मरुत' कहा गया है। मरुतों के भोजन के सम्बन्ध में उक्त सूक्त के मंत्र ३ में कहा है:—

"पयो धेनूनां रसमोषधीनां जवमर्वतां कवयो य इन्वथ।" अर्थात् जो ज्ञानी जन गायों का दूध और अनाजों (औषधियों) का रस सेवन करते हैं उनके अन्दर "जवम् अर्वताम" घोड़ों के समान तेज दौड़ने की शक्ति आती है। इस स्थल पर भी वेद केवल दूध और अन्न तथा वनस्पतियों का ही निर्देश करता है।

ऊपर हमने वेद तथा धर्म शास्त्रों के अनेक प्रमाणों से इस पक्ष को सिद्ध करने का प्रयास किया कि मांस मानव का आहार नहीं। उसके भक्षण से मनुष्य मनुष्य नहीं रह जाता! इस लिये उसका सर्वथा त्याग करना ही उपयुक्त है। किन्तु नीति, धर्म और वेद शास्त्र तो उनके लिये प्रमाण हैं जिनके हृदय में उनके लिए श्रद्धा और विश्वास हो। समाज में कुछ ऐसे भी नर-तन धारी हैं जिनके समक्ष धर्म, ईश्वर और वेद की कोई विशेष मान्यता नहीं है। अस्तु, ऐसे भ्रान्त जनों के समक्ष कतिपय

युक्तियां प्रस्तुत करना अपना कर्त्तव्य समझता हूं।

१— मनुष्य वनस्पति भोजी पशुओं की श्रेणी का प्राणी है। उसे मांस भोजी प्राणियों की कोटि में नहीं रखा जा सकता—क्योंकि··

अ-मांसाहारी प्राणियों के शरीर से ग्रीष्म ऋतु में भी पसीना नहीं निकलता। केवल जिह्वा से कुछ लार टपकती है। किन्तु गाय, बैल, घोड़े आदि शाकाहारी प्राणियों के शरीर से पसीना निकलता है। मनुष्य के शरीर से भी पसीना निकलता है अतः वह शाकाहारी प्राणी है। मांस उसका आहार नहीं हो सकता।

आ-जगत में जितने भी मांसाहारी प्राणी हैं, चाहे वह कुत्ता हो अथवा शेर, स्यार हो अथवा लोमड़ी, पानी अपनी जिह्वा से ही लप-लप कर पीते हैं। किन्तु निरामिष प्राणी गाय, बैल, भैंस, घोड़ा आदि घूँट-घूँट कर ही पानी पीते हैं। मनुष्य भी घूँट-घूँट कर ही पानी पीता है। अतः मनुष्य भी निरामिष भोजी प्राणी है। मांस उसका भोजन नहीं है।

इ-मांसाहारी पशुओं के दाँत नुकीले और नख लम्बे तथा तेज होते हैं। उन दाँतों से मांसाहारी प्राणी मांस को खींच-खीच कर और फाड़-फाड़कर निगलते हैं। पर गाय, बैल भैंस आदि पशुओं के दाँत नुकीले नहीं होते और नख भी चौड़े होते हैं। मनुष्य के भी दाँत और नख नुकीले नहीं होते। अतः वह शाकाहारी प्राणी है। मांसाहारी नहीं। जैसे गाय भैंस आदि पशु खिलाने पर भी मांस नहीं खा सकते उसी प्रकार मनुष्य भी न खाये।

ई-मांसाहारी जीव मांस को चबाकर नहीं खाता, वह टुकड़ों को ही निगल जाता है। क्योंकि उसके जबड़ों और दाढ़ के मध्य घुमावदार चक्की नुमा दाँत नहीं होते

जिनपर रखकर वह मांस चबाये। इसीलिये विवशतया उसे टुकड़े ही निगलना पड़ता है। पर गाय बैल आदि पशु चारा लेकर जबड़ों और दाढ़ के मध्य की चक्की पर रख अपना चारा पीसकर ही निगलता है। मनुष्य भी वैसा ही करता है। अतः वह आमिषाहारी नहीं।

उ-मांसाहारी पशुओं के आमाशय में हैड्रो क्लोरिक ऐसिड नामक पाचक तत्व इतनी पर्याप्त मात्रा में निकलता है कि मांसाहारियों के पेट में स्थित मांस ही नहीं, हड्डी के टुकड़े भी सरलता से पच जाते हैं। पर गाय, बैल, बकरी, घोड़ा आदि के आमाशय में हैड्रो क्लोरिक ऐसिड की मात्रा बिलकुल कम हाती है। ऐसी ही मनुष्य के आमाशय की भी स्थिति है। अतः पाचकतत्व के अनुपात और मात्रा भेद की स्थिति भी स्पष्ट घोषणा करती है कि मनुष्य मांसाहारी प्राणी नहीं है।

ऊ-शरीर शास्त्रियों और जीवविज्ञान के पंडितों ने बतलाया है कि मांसाहारी प्राणियों की अँतड़ियाँ उनके शरीर के लम्बाई की केवल तीन गुनी होती हैं पर निरामिष भोजी पशुओं और सभी मनुष्यों के अँतड़ी की लम्बाई शरीर की लम्बाई की १२ गुनी होती है। यह अँतड़ी-भेदभी सकारण है। भोजन पचने पर क्रमशः रस रक्त और मांसादि बनता है। मांस स्वयं पचने के पश्चात् की तृतीय स्थिति पर पहुँच चुका है। अब उसे फिर से पचना नहीं है। इसी लिए उसे वहुत बड़ी अँतड़ी पार करने की आवश्यकता नहीं है। इसी लिए मांसाहारी प्राणियों की अँतड़ियां छाटी होती हैं। एक और भी कारण है। मांस में शीघ्र सड़ान उत्पन्न हो जाती है। यदि उसे बड़ी अँतड़ी पार करना पड़ता तो सम्भव है उतने समय में सड़कर उक्त प्राणी का नरक का घर बना देती। इसीलिये करुणामय भगवान ने ऐसे

प्राणियों की अँतड़ियाँ छोटी बनाई हैं। पर घास खाने वाले पशुओं और मनुष्यों के भोजन को पचना पड़ता है और उसके सड़ने का भी प्रश्न नहीं हैं। इसी कारण उन्हें बड़ी अँतड़ियां मिली हैं। इस प्रकार अँतड़ी--भेद से भी सिद्ध है कि मनुष्य मांस--भोजी प्राणी नहीं है।

ऋ--जितने भी मांसाहारी प्राणी है, प्रसव काल में उनके बच्चों की आँखें बन्द रहती हैं पर शाकाहारी प्राणी गाय, बैल और मनुष्य के बच्चों की आँख खुली रहती है। अतः मनुष्य मांसाहारी प्राणी नहा ह।

ॠ--जितने भी मांसाहारी प्राणी हैं, मैथुन के समय नर और मादा परस्पर जुट जाते हैं पर सभी शाकाहारी पशु और मनुष्य की ऐसी स्थिति नहीं है। अतः मनुष्य मासाहारी प्राणी नहीं है।

— मांस मनुष्य का स्वाभाविक भोजन नहीं है- मांसाहारी सिंह, भेड़िया, चीता आदि भूखे होने पर भेड़, बकरियों मनुष्यों आदि पर झपटते हैं पर फल, दूध और वनस्पतियों पर उनका कोई भी आकर्षण नहीं होता। इसके विपरीत मांसाहारी मनुष्य भी मांस के लोथड़े को देख उसकी ओर झपटता हुआ कभी भी दिखाइ नहीं पड़ा। हाँ, दूध, फल और मिष्ठान्नादि उसक आकर्षण के केन्द्र अवश्य रहे। अस्तु इस बात के आधार पर भी यही कहा जा सकता है कि मनुष्य मांसाहारी प्राणी नहीं है।

— पोषक तत्व की दृष्टि से भी मांस भोज्य पदार्थ नहीं कहा जा सकता—मांस के अन्दर स्वयं का पोषक तत्व कुछ भी नहीं है। यदि उसमें कुछ भी पोषक तत्व विद्यमान है तो वह सीधे वनस्पतियों से ही आया है। इसी लिये मांसाहारी लोग मांसाहारी पशुओं का नहीं, वनस्पति भोजी पशुओं काही मांस खाते हैं। अतः पोषक तत्व की राशि तो

वनस्पतियों में विद्यमान है। तब इस आधार पर मांस
भोजन करना तो बिना लाभ का पाप ही है। हाँ, प्रोटी
की मात्रा मांस में कुछ अधिक पाई जाती है। किन्तु इस
अधिक प्रोटीन तो दूध, फल, दाल, मटर और बादाम
पाई जाती है। साथ ही वे इतर तत्व भी उक्त पदार्थों
पाये जाते हैं जिनका मांस में सर्वथा अभाव है। अतः पो
तत्व की दृष्टि से भी मांस खाद्य पदार्थ नहीं कहा
सकता।

४— बिटामिन की दृष्टि से मांस निस्सार है:—विश्लेषण क
वाले विद्वानों का कथन है कि मांस में बिटामिनों का च
अभाव न हो पर उसमें उसकी अधिकता नहीं है। सवाधि
बिटामिट गाय के दूध, घी, मक्खन, अनाज, फल और
शाकों में पाई जाती है। मांस के अन्दर जो बिटामिन है
वह उसे तलने और भूनने से समाप्त हो जाती है। क
मांस में कुछ बिटामिन अवश्य है पर उसका कच्चा खा
जाना सम्भव नहीं। किन्तु इसके विपरीत दूध, फल, मक्ख
शाक और अन्न कच्चा ही आनन्द से खाया जा सकता
और उसके अन्दर विद्यमान सम्पूर्ण बिटामिनों का उपयो
सरलता से किया जा सकता है। साथ ही यह भी न
भूला जा सकता कि मांस के अन्दर स्थित बिटामिन
आदि श्रोत वनस्पतियाँ ही हैं। तब बनस्पतियों को त्याग मां
भक्षण जैसा द्रविड़ प्राणायाम करने से क्या लाभ ?

५— मांस का भोजन विषैला और रोग जनक है—काम कर
करते श्रम के कारण पशुओं के शरीर के घटक मरते रहते
जो रक्त में मिलकर उसके अन्दर एक प्रकार का विष उत्प
करते रहत हैं। पशु को मारकर उसी विषैले रक्त औ
मांस को खाना अपने शरीर को भी विषैला बनाना है
मुर्गी आदि पक्षी जो नित्य ही रोगियों के श्लेष्मा (कफ

को खाया करते हैं, मार कर खाना अपने शरीर में अनेक भयानक रोगों के कीटाणुओं को भरना है। अतः इस दृष्टि से भी मांस सर्वथा अखाद्य ही है।

मांस भक्षण के समर्थन में कुछ तर्क और उनका उत्तरः—

१–मांस भोजी व्यक्ति प्रायः कहा करते हैं कि अहिंसा के प्रचार से राष्ट्र नपुंसक बन जाता है। उस नपुंसकता और कायरता को दूर करने के लिए हिंसा प्रिय होना आवश्यक है। इसीलिए मांस खाना उपयोगी है। परन्तु वे भोले भाई इस बात को सर्वथा भूल जाते हैं कि मांस-भक्षण से व्यक्ति अपने सौजन्य को खोकर क्रूर भले ही बन जाय पर वीर तो नहीं ही बन सकता। निर्बल प्राणियों पर अमानुषिक और क्रूरता पूर्ण प्रहार करके उनको अपने पेट में रख लेना वीरता नहीं कहलाती। सत्य और न्याय के पथपर डटना, क्षमा-शील होना तथा निर्बल और असहाय प्राणियों की रक्षा करना ही वीरता है। दयालुता पूर्ण क्षमाशीलता ही वीरता है। "क्षमैव वीरस्य भूषणम्" कहकर शास्त्र कार ने क्षमा और धीरता को ही वीरता का लक्षण कहा है। मांस भक्षण को नहीं।

२-मांस भोजी यह तर्क करते हैं कि यदि भेंड़ बकरे और अन्य अनेक पशु पक्षी खाये न जांय तो एक दिन ऐसा आयेगा जबकि सारा संसार इन पशु पक्षियों से भर जायगा। मनुष्यों के लिए स्थान ही न रह जायगा। अस्तु, ये बिचारे केवल परोपकार प्रियता वश ही मांस भक्षण करते हैं। पर मैं नम्रता पूर्वक पूछना चाहूँगा कि

अन्ततः आपको इसकी चिन्ता क्यों है? जिसने बकरे

आदि पशुओं की रचना की है, क्या उसने इसपर विचार न किया होगा ? कौओं और गृद्धों को कोई नहीं खाता। क्या इनसे पृथिवी पट गई ? चींटी और मच्छरों ने क्या संसार को पाट दिया ? फिर इन पशु-पक्षियों के सम्बन्ध में हीं इतनी चिन्ता क्यों की जाय ? सृष्टि-नियामक स्वयं प्रत्येक का नियन्त्रण करता है। उसके नियन्त्रण में ही प्रत्येक प्राणी और पदार्थ का विकास अथवा ह्रास होता रहता है। अतः इस भ्रामक परोपकार प्रियता वश भी मांस खाना उचित नहीं कहा जा सकता।

३–मांसाहारी यह भी कहते हैं कि यदि मांस खाना पाप होता तो ध्रुव प्रदेश में मनुष्य कदापि न उत्पन्न होते। क्योंकि ध्रुव प्रदेश में उत्पन्न होकर वे मांस के अतिरिक्त खा ही क्या सकते हैं ? इस प्रकार उनके इस अमोध तर्क के अनुसार भगवान ने स्वयं मनुष्य को मांसाहारी बनाकर भेजा है तब मांसाहार पाप कैसे है ? सामान्य रूप से देखने में यह तर्क अवश्य सबल दीखता है। पर पाठक इसे न भूल जांय कि उसी ध्रुव प्रदेश में रेण्डियर नामक प्राणी ने भी जन्म धारण किया है। जो शुद्ध शाकाहारी है और जो केवल बर्फ के ऊपर जमी हुई काई को ही खा कर अपने जीवन का निर्वाह करता है। यदि ध्रुव प्रदेश में उत्पन्न होने ही से मांसाहारी बना जा सकता है तब रेण्डियर को भी मांसाहारी होना चाहिये था। किन्तु ऐसा आज तक नहीं हो सका। जब रेण्डियर विना मांस खाये वहाँ जीवित रह सकता है और अपनी बंश परम्परा चलाने में समर्थ बन सकता है तब परम विवेकी मानव के लिये तो कहना ही क्या है ? वह तो अपनी बुद्धि का उपयोग करके जीवन निर्वाह के अनेक साधन उपलब्ध कर सकता है। अस्तु ध्रुव प्रदेश में भी उत्पन्न होकर मनुष्य के लिए मांस खाना अनिवार्य नहीं है।

४—मांस को अखाद्य कहने पर मांसाहारी दूध पीने पर आपत्ति उठाता है। उसकी समझ में मांसाहार और दुग्धाहार में कोई अन्तर नहीं है। क्योंकि दोनों की उपलब्धि पशु से ही होती है अतः यदि मांसाहार पाप का कारण है तो दुग्धाहार उस दोष से पृथक नहीं हो सकता। ऊपरी दृष्टि से बात है भी कुछ ऐसी ही किन्तु किंचित विचार करते ही आपत्ति निराधार सिद्ध होती है। इस सम्बन्ध में हम चार दृष्टियों से विचार रेंगे और देखेंगे कि आपत्ति कहाँ तक तर्क संगत है।

१—नर और मादा दोनों एक ही प्रकार का चारा खाते हैं पर दूध की सृष्टि केवल मादा पशु के ही स्थन में होती है। नर पशु अथवा पुरुष में दूध उत्पन्न करने की शक्ति नहीं है। मादा जाति के पशु अथवा स्त्री में भी केवल प्रसव काल में ही दूध उत्पन्न होता है। उसके पूर्व अथवा उसके कुछ काल के पश्चात् नहीं। यदि रक्त और मांस की श्रेणी में ही दूध भी होता तो वह नर और मादा अथवा स्त्री और पुरुष दोनों के स्थन में उत्पन्न होता और सभी समयों में उत्पन्न होता। पर ऐसा होता नहीं। अतः यह मानना पड़ेगा कि दूध रक्त और मांस से भिन्न पदार्थ है।

२—इस सम्बन्ध में हमारा दूसरा निवेदन यह है कि प्रत्येक प्राणी के अन्दर उसके शरीर के भार का १/२० भाग रक्त रहना अनिवार्य है। उससे कम होना निर्बलता का कारण होगा और उससे अधिक को शरीर की नस नाड़ियां संभालने में असमर्थ हैं। अस्तु, ऐसी स्थिति में यदि यह कहा जाय कि रक्त से ही दूध का सम्बन्ध है तो निश्चय ही दूध देने वाले पशु दिन मे दो या तीन बार मोटे और पतले हो जाया करेंगे। परन्तु यह प्रत्यक्ष के सर्वथा प्रतिकूल है। गाये दूध देती हैं और माता बच्चा को पिलाती ही रहती

है। पर उसके शरीर के रक्त में कमी भी न्यूनता नहीं देखी गई। अतः सिद्ध है कि दूध का रक्त और मांस से कोई भी सम्बन्ध नहीं है।

३–वास्तव में गाय, भैंस, बकरी आदि दुधारु पशु अथवा माता जो भोजन करती है, पचने के पश्चात् उसका दो प्रकार का रस बनता है। एक प्रकार का रस तो रक्त बनाने का काम करता है और दूसरे प्रकार का रस दूध बनाने वाले यन्त्रों में जाकर सीधे दूध के रूप में रूपान्तरित हो जाता है। आयुर्वेद के ग्रन्थों में स्पष्ट निर्देश है कि 'रसात् स्तन्यं प्रवर्तते' अर्थात् रस से ही दूध का निर्माण होता है। यह दूध बनाने वाला यन्त्र केवल मादा प्राणी में ही पाया जाता है। कभी कभी देखा जाता है कि गाय बकरी या भैंस जिन वनस्पतियों को खाती हैं उनका रंग और उनकी गन्ध भी दूध में व्यक्त होती रहती है। मुझे स्वयं अपनी रुग्णावस्था में बकरी का दूध पीना पड़ा था। हमारी बकरी दशमूल वनस्पति तथा ताम्र पर्णी और पृष्ट पर्णी (सरिवन, पिठवन) नाम की घास खाती थी। उसके दूध में उक्त पदार्थों की पूरी पूरी गंध मिलती थी। अतः यह कैसे कहा जा सकता है कि दूध का उद्भव स्थान पशुओं का रक्त और मांस है।

४–यदि दुर्जन तोष न्याय से यह मान भी लिया जाय कि गाय आदि पशुओं के रक्त से ही दूध बनता है तो भी उसके अन्दर दोष नहीं लगाया जा सकता। क्योंकि यदि रक्त से दूध बनता भी है तो उसके अनेक रासायनिक परिवर्तनों के पश्चात् दूध का रूप प्रकाश में आता होगा। जैसे गोबर और मल मूत्र की खाद देकर हम अन्न उत्पन्न करते हैं पर अन्न उत्पन्न होने के पश्चात् वह गोबर गोबर नहीं अपितु गेहूँ होता है। आज तक किसी ने भी उस गेहूँ को गोबर अथवा मल मूत्र नहीं

कहा। उसकी संज्ञा गेहूँ ही रही। जब गोबर से रासायनिक उपलब्धि के पश्चात् गेहूं जैसा निर्दोष पदार्थ बन सकता है तब रक्त से भी रासायनिक ही परिवर्तन पाकर दूध सदोष कैसे कहा जा सकता है ? अतः बादी का यह तर्क भी दूध को रक्त सिद्ध करने तथा मांस को खाद्य सिद्ध करने में सर्वथा असमर्थ है।

५—मांसाहारी व्यक्ति अन्त में विवश होकर कह उठता है कि यदि हिंसा मूलक होने से मांस अभक्ष्य है तो फल और वनस्पतितां भी भक्ष्य नहीं कही जा सकतीं। क्योंकि पेड़ पौधों में भी जीव होता है। तब अनाज और फल हिंसा से कैसे परे कहा जा सकता है ? अस्तु, यह तर्क भी विचारणीय है। सर जगदीश चन्द्र वसु ही नहीं स्वयं वेद भी पेड़ पौदों में जीव की सत्ता को स्वीकार करता है। वैदिक सिद्धांत स्वयं प्रतिपादन करता है कि अत्यन्त निकृष्ट कर्म के फल स्वरूप जीव, परमात्मा की न्याय व्यवस्थानुसार चेतना शून्य उद्भिज योनि को प्राप्त करता है। अतः हमें पेड़ पौधों में जीव की सत्ता से इनकार नहीं। पर केवल जीव की सत्ता मात्र से ही हिंसा का आरोप उचित नहीं कहा जा सकता। जीव की तीन विशेषतायें होती हैं। (१) बाहर से सामग्री ग्रहण कर शरीर के अंगों की वृद्धि करना। (२) अपने जैसी सन्तान उत्पन्न करना और (३) चेतन होना। पेड़ पौधों में उक्त दो प्रकार की विशेषतायें तो हैं पर चेतना का अभाव है। चेतना के अभाव से सुख-दुख की अनुभूति भी सम्भव नहीं। वनस्पतियों की चेतना प्रगाढ़ निद्रा अर्थात् सुसुप्तावस्था में रहती है। अतः उसे सुख-दुख का अनुभव हीं नहीं होता। जब सुख या दुख का अनुभव ही नहीं तब हिंसा और अहिंसा का प्रश्न ही व्यर्थ है। सर जगदीश चन्द्र वसु ने वनस्पतियों के अन्दर

चेतना और सुख दुख की अनुभूति नहीं सिद्ध की है अपितु उन्होंने यह सिद्ध किया था कि रासायनिक और भौतिक क्रियाओं से वनस्पतियों के अवयवों में स्पन्दन हो जाता है। पर इससे चेतना की सिद्धि नहीं होती। चकवड़ की पत्तियाँ और कमल के फूल सूर्योदय होते ही खुल तथा सूर्यास्त होते ही बन्द हो जाते हैं) पर क्या इस क्रिया से उसके अन्दर चेतना का भाव सिद्ध होना सम्भव है ? चन्द्रिका के प्रकाश में चन्द्रकान्ति मणि का पसीजना किसी चेतनता का द्योतन करता है अथवा रासायनिक क्रिया विशेष का ही परिचायक है ? यदि इसे किसी प्रकार चेतना कहें भी तो भी श्री जगदीश चंद्र बसु ने स्वयं इसे चेतना नहीं माना है। उन्होंने तो स्पष्ट शब्दों में कहा है कि 'वनस्पतियों में वह चेतना नहीं है जिसे अंग्रेजी में Imaginative अथवा संस्कार या स्मृति मूलक कल्पना कहते हैं।')पर सुख या दुख की अनुभूति तो Imaginative अर्थात् संस्कार और अनुमान योग्य चेतना को ही होती है, जिसका वनस्पतियों में अभाव है। अतः अन्न और वनस्पतियों के खाने से भी हिंसा होती है, यह कहना नितान्त भ्रान्ति मूलक है। और जब "पयः पशूनां रसमोषधीनाम्" के अनुसार वनस्पतियों का खाना वेद विहित है तब तो उसके सम्बन्ध में कुछ कहना ही नहीं है। अतः इस तर्क के सहारे मांस भक्षण के प्रवृत्ति की रक्षा करना एक हास्यास्पद प्रयास मात्र होगा। जिस जिस में जीव हो उस उस में मांस भी हो, यह सर्वथा भ्रामक ज्ञान है। हां, जहाँ रक्त होगा वहां मांस अवश्य होगा। पेड़ों और वनस्पतियों में रस होता है रक्त नहीं। अतः वनस्पतियों में मांस का अभाव है। किसी प्राणी के रक्त और मांस लेने में कष्ट पहुँचता है, उसका रस लेने में कष्ट नहीं अपितु उसे सुख ही मिलता है। समय पर यदि

गाय का गोरस (दूध) न निकाला जाय तो वह चिल्लाने लगती है पर दूहने के पश्चात वह शान्त हो जाती है। अतः प्राणी का रस लेना दुखकर नहीं। उसका रक्त और मांस लेना दुख कर है। इसी लिये अन्न और फल की समता मांसाहार से नहीं की जा सकती।

यद्यपि निबन्ध की काया विस्तृत होती जा रही है जिसके विस्तारभय से भयभीत होना स्वाभाविक है। तथापि इसी प्रसंग में अण्डा के खाद्याखाद्यता के सम्बन्ध में विचार न करना उचित न होगा। अस्तु उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। कहा जाता है कि अण्डा तो एक प्रकार की वनस्पति ही है। उसमें कोई अवयव नहीं। रक्त मांस विहीन और चेतना रहित होने से अण्डा के खाने से हिंसा का भी प्रश्न नहीं उठता। अतः अण्डा के खाने में किसी को क्या आपत्ति हो सकती है? बात ठीक है। माना कि चेतना का अभाव होने के कारण उसे सुख दुख की अनुभूति सम्भव नहीं है। अवश्य ही हिंसा न होगी। पर अण्डा है क्या वस्तुः? वास्तव में वह दो पक्षियों के रज और वीर्य का मिश्रण है जो शिशु का रूप धारण करने की ओर अग्रसर हो रहा है। आत्मा उसके अन्दर निवास करती है जो कालान्तर में एक नवीन पखेरू बनकर आकाश में विचरण करेगी। पर हम अपने स्वार्थ के वश में होकर उसका अस्तित्व ही समाप्त कर देते हैं। अण्डा के समान ही माता के गर्भ में स्थित अर्भक अवयव-विहीन होता है। पर गर्भ-पातन को क्या भ्रूण हत्या की संज्ञा नहीं दी गई है? क्या पात करने और कराने वाला प्राणी राज-नियम के समक्ष दण्ड्य नहीं है? यदि है तो उसी नियम से पक्षी-कुल का गर्भ खा जाना जैसी नृशंसता और क्रूरता मान्य कैसे हो सकती है? जब मनुष्य के लिये स्वयं अपना गर्भ

गिराना अपराध कहा गया है तब अन्य प्राणियों का गर्भ गिराना ही नहीं खा जाना उचित कर्म कैसे कहा जा सकता है ? यतः अण्डा खाकर हम एक आत्माको संसार में क्रिया-शील होने से वंचित कर देते हैं और उसके सारे भावी सुखों को मटिया मेट कर देते हैं अतः हम घोर हिंसा के पाप से पृथक कैसे कहे जा सकते हैं ? इस लिये अण्डा भी मानव के लिये सर्वांश में अखाद्य है। जहां तक उसके अन्दर निहित पौष्टिक तत्वों का प्रश्न है, वे तो दूध, फल और सभी शाकों में भरे पड़े हैं। अतः इस दृष्टि से भी अण्डा की खाद्यता का प्रतिपादन नहीं किया जा सकता।

इस प्रकार हमने देखा कि मांस, मछली, अण्डा आदि मनुष्य के लिए खाद्य पदार्थ नहीं हैं। न नैतिक दृष्टि से उसका समर्थन किया जा सकता है और न धार्मिक / धर्म ग्रन्थों ने भी उसका सर्वथा निषेध किया है। युक्ति और तर्क भी उसका साथ देने मे सर्वथा असमर्थ है। अतः समझदार व्यक्तियों से निवेदन है कि वे इस पर विचार करें और यदि उनकी बुद्धि में हमार यह निवेदन उचित ठहरे तो भगवान के नाम पर व्रत पूर्वक मांस, मत्स्य और अण्डा का भक्षण करना त्याग कर स्वयं कष्टों से बचें और दूसरे प्राणियों को भी सुख से जीने दें। इत्यलम्

आदर्श जनों का भोजन

बाल्मीकी रामायण जहां ललित महाकाव्य है वहीं प्रामाणिक इतिहास भी। हम उसके द्वारा यह देखने की चेष्टा करेंगे कि हमारे आदर्श भगवान राम आदि का भोजन क्या था निषाद ने राम से मिलकर और आलिंगन करके कहा—

ई दृशं हि महा वाहो ! कः प्राप्स्यत्यतिथि प्रियम्।
ततो गुणवदन्नाद्यं उपादाय पृथक् विधम् ॥ अयो-५०-३७
भक्ष्यं भोज्यं च पेयं च लेह्यं चेदमुपस्थितम्। ५०-३९

अर्थात् निषाद राम से कहता है कि हे महा बाहु ! हम बड़े भाग्य शाली हैं कि आपके समान अतिथि हमें मिला है। अन्यथा ऐसा अतिथि कौन पायेगा ? फिर गुणकारी अन्नादि ला कर उनके समक्ष अलग-अलग रखा और कहा कि हे महाराज ! भक्षण करने योग्य, खाने योग्य, पीने योग्य तथा चाटने योग्य यह सामग्री उपस्थित है। निषाद ने क्या-क्या सामग्री राम को दी थी ? वह स्वयं भरत से बतलाता है—

अन्नं उच्चावचं भक्ष्याः फलानि विविधानि च।
रामाय ऽभ्याहारार्थं वहु चोपहृतं मया ॥ अयो-८७-१४

अर्थात् हे भरत जी ! मैंने भगवान राम के लिये विविध प्रकार के अन्न और विविध प्रकार के फल भोजन के लिये लाकर उपस्थित किया। निषाद, उसके दास सभी फल मूल भोजी थे। मांसाहारी नहीं थे-निषाद कहता है—

तिष्ठन्तु सर्वे दाशाश्च गंगामन्वाश्रिता नदीम्।
जाल युक्ता नदी रक्षा कन्द मूल फलाशनाः ॥ अयो० ८४-७

अर्थात् कन्द मूल फल खाने वाले सभी हमारे दाश जाल आदि से युक्त होकर गंगा का आश्रय लेकर तैयार हो जाँय। भरत का आगमन हो रहा है।

इति उक्त्वोपायनं गृह्य कन्द मूल फलानि च ।
अभि चक्राम भरतं निषादाधिपतिर्गुहः ॥ ८४-१०
अस्ति मूलं फलं चैव निषादैः समुपाहृतम् ।
आर्द्रं कन्दं च शुष्कं च वन्यं चोच्चावचं महत् ॥ ८४-१७

अर्थात् अपने दाशों से इस प्रकार कह कर निषाद राज गुह कन्द मूल फल की भेंट लेकर भरत के पास पहुँचा। उसके लाये हुये पदार्थों मे जड़ और फल थे। जड़ों में कोई ताजी थी कोई शुष्क थी और अच्छे-अच्छे अन्य जंगली पदार्थ थे ।

चित्रकूट में भगवान राम भरत से कहते हैं--

बन वासं वसन्नेवं शुचिर्नियत भोजनः ।
मूलैः पुष्पैः फलैः पुण्यैः पितॄन् देवांश्च तर्पयन् ॥ अयो.१०९-२६

अर्थात् हे भरत ! पवित्र जड़ों, फलों, फूलों के द्वारा नियमित रूप से भोजन करते हुए और पवित्रता पूर्वक देवता पितरों का तर्पण करते हुए इस ढंग से वनवास करते हुए अपना समय व्यतीत करूंगा ।

शूर्पणखा अपने भाई खर से राम लक्ष्मण का परिचय देती हुई कह रही है :-

फल मूलाशनौ दान्तौ तापसौ धर्म चारिणौ ।
पुत्रौ दाशरथस्यास्तां भ्रातरौ राम लक्ष्मणौ ॥ अरण्य १९-१५

अर्थात् पंचवटी में दशरथ के दो पुत्र राम और लक्ष्मण हैं जो फल मूल खाने वाले हैं अपनी इन्द्रियों का दमन करने वाले, तपस्वी तथा धर्म का आचरण करने वाले हैं। यहां शूर्पणखा की दृष्टि में भी राम फलाहारी ही हैं ।

सुन्दर कांड में सीता की विशेषता बतलाते हुए उनके भोजन की बात कही जा रही है--

सन्तुष्टा फल मूलेन भर्तृ शुश्रूषणे रता ।
या परां भजते प्रीतिं वनेऽपि भवने यथा ॥ सुन्दर० १६-२०

अर्थात् जो सीता मूल, फल आदि के भोजन से सन्तुष्ट होकर

अपने पति की सेवा में लगी हुई वन में भी घर की ही भांति परम प्रीति को प्राप्त हो रही थीं।

उक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि भगवान् राम, लक्ष्मण, भरत सीता जो हमारे जीवनादर्श हैं, उनका भोजन फल, अन्न और वनस्पतियां हीं थीं। यहां तक कि निषाद राज गुह तथा उसके दाश भी फल मूल भोगी सच्चे शाकाहारी थे। उनमें से कोई भी मांसाहारी न था। क्या हम अपने उक्त आदर्श पुरुषों के आचरण का अनुकरण करके शाकाहारी वन अपना जीवन आदर्श बनायेंगे?

इस्लाम धर्म के अन्दर मांस वर्जित है। कुरान मजीद 'सूरा हज' आयत ३६ में लिखा है "खुदा तक न तो उन प्राणियों का मांस ही पहुँचता है न खून जिन्हें तुम कुर्बानी के नाम पर मारते हो। उस तक तो तुम्हारी परहेज गारी ही पहुँचती है।" क्या खाना चाहिये? कलाम पाक इसका भी निर्देश सूरा इन आम आयत १४२ में इस प्रकार करता है —"वही सृष्टि कर्ता है जिसने बाग पैदा किये। कुछ तो टट्टियों पर चढ़ाये हुए (जैसे अंगूर की वेलें) और कुछ नहीं चढ़ाये हुए, और खजूर के पेड़ और खेती, जिनकी फसलें होती हैं-ये सब पेड़ जब फलें उनके फल खाओ'।

ईसाइयत भी मांसाहार का बर्जन ही करती है। बाइबिल के कुछ अंश इस प्रकार हैं—"जो मेरे लिये पशुओं को मार कर मांस की बलि चढ़ाते हैं और खा जाते हैं ऐसे लोगों की उन बलियों को ईश्वर ग्रहण नहीं करता।" वह इनके अन्यायों को ध्यान में रख कर उनके पापों का दण्ड देता है'। Hosea XIII। पुनः ओल्ड टेस्टामेंट में लिखते हैं—"जो पशु पक्षियों की खाल को उनके शरीर से और मांस को उनकी हड्डियों से खोचते हैं, जो मेरे द्वारा रचे हुए जीवों का मांस भक्षण करते हैं, उनका चमड़ा निकाल डालते हैं, जो उनकी हड्डियों को तोड़ डालते हैं, उनके छोटे-छोटे टुकड़े बना उन्हें बर्तन बनाने के काम में लेते हैं,

मांस को हंडे में डाल कर पकाते हैं; ऐसे मनुष्य यदि ईश्वर को जोर-जोर से पुकारेंगे तो भी वह उनकी पुकार न सुनेगा और वह उनकी ओर से अपना मुँह मोड़ लेगा क्योंकि उन लोगों ने उसकी दृष्टि में बहुत बुरा काम किया है"।)

मांस भक्षण के सम्बन्ध में महापुरुषों के विचार

१—।"मद्य, मांसाहारी म्लेच्छ कि जिनका शरीर मद्य-मांस के परमाणुओं ही से पूरित है, उनके हाथ का (भोजन) न खायें।

—महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती

२—"इन पशुओं को मारने वालों को सब मनुष्यों की हत्या करने वाला जानियेगा। देखो जब आर्यों का राज्य था तब ये महोपकारक गाय आदि पशु नहीं मारे जाते थे। तभी आर्यावर्त और अन्य भूगोल देशों में बड़े आनन्द से मनुष्य आदि प्राणी वर्तते थे। क्योंकि दूध, घी, बैल आदि पशुओं की बहुताई होने से अन्न, रस पुष्कल प्राप्त होते थे। जबसे विदेशी मांसाहारी इस देश में आके गो आदि पशुओं के मारने वाले मद्य पानी राज्याधिकारी हुए तब से क्रमशः आर्यों के दुख की बढ़ती होती जाती है।"

—सत्यार्थ प्रकाश

३—"जो किसी पशु की हत्या करता है और मांस खाता है वह ईश्वर के दरबार में हत्यारा है। मांस खाने वाला राक्षस है क्योंकि उसके हृदय से दया का लोप हो जाता है।"

—सन्त कबीर

४—किसी पशु की पीड़ा और मृत्यु उतनी भयंकर नहीं है जितनी कि मनुष्य द्वारा हत्या किये जाने का प्रयत्न। अपने हृदय से दया और अहिंसा की भावना का निष्कासन करके मनुष्य अपने आदर्श से पतित हो जाता है। जो पशु उसके पास प्रसन्नता पूर्वक आते हैं और पालतू बनते हैं उनकी हत्या करना कितना भयानक विश्वास घात है।"

—महात्मा लियो टालस्टाय

अमर स्वामी प्रकाशन

साहित्य की सं

अमर स्वामी जी महाराज कृत—

१. निर्णय के तट पर
२. कौन कहता है द्रोपदी के पाँच प
३. गीता और महर्षि दयानन्द
४. सन्ध्या के दो मन्त्रों की व्याख्य
५. अमर गीताँजली ४ भाग ११–००
६. क्या रावण वध विजय दशमी को हुआ था? ३–००
७. धर्म बलिदान
(पँ० शुक्रराज शास्त्री को नेपाल में फाँसी) २–५०

अन्य उपयोगी ग्रन्थ—

१. कुरान परिचयं —पं० देव प्रकाश ४०–००
२. मन्दिरों की लूट —पं० देव प्रकाश १५–००
३. गोपथ ब्राह्मण भाष्यम् —पं० क्षेमकरण दास ४०–००
४. अमर स्वामी अभिनन्दन ग्रन्थ
—सम्पा० ठा० विक्रम सिंह १५–००

नोटः—विशेष जानकारी हेतु प्रकाशन से बृहद् सूची पत्र मुफ्त प्राप्त करें। "प्रबन्धक"

प्रकाशक :—
आर्य समाज, जौनपुर।